ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016



# शिक्षा के निजीकरण का सामाजिक रूप से वंचित वर्गों पर प्रभाव

**डॉ0 सतीश कुमार सिंह***

सामाजिक न्याय की विचारधारा बुनियादी रूप से सभी मनुष्यों को समान मानती है। किसी भी मानव के साथ सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिये। भारत जैसे देश में सामाजिक न्याय का प्रयोग वंचित समूहों द्वारा अपने अधिकारों की माँग के लिये किया जाता रहा है। डॉ0 अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय पर व्यापक विचार किया था। उनके अनुसार प्रमुख रूप से सामाजिक न्याय से तात्पर्य सामाजिक समानता है। सामाजिक न्याय का सिद्धान्त यह माँग करता है कि किसी भी व्यक्ति के साथ लिंग, वर्ण, जाति, धर्म व स्थान के आधार पर भेदभाव न किया जाये तथा उसे आत्मविकास के समान अवसर प्राप्त हों। सामाजिक न्याय किसी भी आधार पर किये गये शोषण का निषेध करता है। संविधान के अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि सामाजिक न्याय एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय भी सम्मिलित है। भारत में प्राचीनकाल से शूद्र वर्ण में शामिल अनेक जातियों को पढ़ने–लिखने का अधिकार ही नहीं दिया गया। देश की आजादी के बाद उन्हें यह अवसर तो मिला परन्तु शिक्षा के निजीकरण के बढ़ते प्रभाव से ये जातियां पुनः पिछड़ती हुई प्रतीत हो रही हैं। आज के इस बदलते परिवेश में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के निजीकरण का समुचित आंकलन कर यह देखा जाय कि इससे सामाजिक न्याय की अवधारणा फलीभूत हो सकेगी।

वर्तमान समय में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार विश्व के अधिकांश देशों मे मौलिक अधिकार के रूप में है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष 1948 में जनरल असेम्बली में यह घोशणा की कि ''प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा निःशुल्क होगी और कम से कम

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (इतिहास विभाग), डी0एस0एन0 पी0जी0 कालेज, उन्नाव।

ऐलीमेन्ट्री स्तर तक शिक्षा अनिवार्य होगी।'' इसी क्रम में वर्ल्ड कॉन्फ्रेन्स 1990 के साथ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45, शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2010 के अन्तर्गत शिक्षा के फलक को निरन्तर व्यापक बनाने का प्रयास किया गया है। पिछले कुछ दशकों में भूमण्डलीकरण प्रभावी हो रहा है तथा शिक्षा के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित हो रहे हैं अतः आज हमें इस बात का अध्ययन करने की नितान्त आवश्यकता है कि सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा।

सर्वप्रथम हमें सामाजिक न्याय के आइने में प्राचीन काल से चली आ रही शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करना होगा क्योंकि तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में जो त्रुटियाँ दिखायी देती हैं वही आज भी हमें विभिन्न रूपों में हमारे सामने विद्यमान हैं। वैदिक युग में शिक्षा हेतु वर्ण के आधार पर कोई विशेष भेदभाव नहीं था। आगे उपनिषदकाल में भी शिक्षा हेतु व्यक्ति के साथ ऊँच–नीच का विचार नहीं किया जाता था। परन्तु परवर्तीकाल में जाति–भेद की जो कलुषित धारणायें व्याप्त हो गयी।[1] प्राचीनकाल मे शूद्रों को वैदिक शिक्षा तथा अन्य विषयों के ज्ञान से वंचित रखा गया। केवल द्विज वर्ण के लिये ही वेद तथा अन्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। प्रायः सभी शास्त्रकारों ने शूद्रों की शिक्षा का निशेध किया है। शूद्रों के लिये सभी संस्कार वर्जित थे।[2] वेदों का अध्ययन करने के इच्छुक शूद्रों के लिये बड़ी कठोर व्यवस्था की गयी थी। गौतम ने यह व्यवस्था दी है कि वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने वाले शूद्रों की जीभ काट देनी चाहिए।[3] वस्तुतः शूद्र संस्कार हीन थे इसलिए चार आश्रमों की व्यवस्था उनके लिए नहीं थी।[4] मध्यकालीन इतिहासकार अलबरूनी ने भी लिखा है कि शूद्रों को वेद पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है। प्राचीनकाल में उपनिषदकाल के अन्तर्गत आचार्यत्व का प्रधान आधार विद्वता थी न कि वर्ण अथवा जाति। उत्तरवैदिककाल में ब्राह्मण आचार्यों के अतिरिक्त क्षत्रिय आचार्यों का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु परवर्तीकाल में आचार्यत्व का आधार वर्ण एवं जाति हो गया। द्विजों

द्वारा वेदों के अतिरिक्त अनेक विषयों की शिक्षा देना उनका प्रधान कर्तव्य माना गया। शूद्रों के शिक्षा प्राप्त करने के उदाहरण यदा–कदा ही प्राप्त होते हैं। लगभग 1700 ई0 तक यही शिक्षा व्यवस्था भारत में निरन्तर चलती रही। ब्रिटिशकाल के दौरान मैकाले की पद्धति एक क्रमबद्ध प्रयत्न था, जिसके द्वारा अंग्रेजी सरकार ने भारत के उच्च वर्ग को अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षित करने का प्रयास किया। उसका विश्वास था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग एक दुभाषिये श्रेणी के रूप में कार्य करेंगे और भारतीय भाषाओं और साहित्य को समृद्धशाली बनायेंगे और पाश्चात्य विज्ञान तथा साहित्य का ज्ञान जनसाधारण तक पहुंचायेंगे।[5] ब्रिटिश शिक्षा का लाभ विशिष्ट वर्ग, भारतीय मध्यम वर्ग को हुआ। इतिहासकार ताराचन्द ने लिखा है कि बहुत समय तक शिक्षित वर्ग की प्रतिभा का दो ही क्षेत्रों में उपयोग हुआ। पहला, शिक्षित पेशों में (डाक्टर, वकालत, अध्यापन) और दूसरा सरकारी सेवाओं में, स्वतंत्र पेशों जैसे कानून, चिकित्सा और शिक्षण के पेशों में।[6] ताराचन्द आगे लिखते हैं साधारण जनता का अज्ञान में आकंठ डूबा रहना समाज पर बहुत भारी बोझ है। यह सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रगति के रास्ते में बड़ा रोड़ा था। कुछ थोड़े से लोगों की शिक्षा के लिए शिक्षा की देशी पद्धति का विनाश किया। भले ही प्राथमिक शिक्षा रही हो फिर भी इसने बहुतों को साक्षर बनाया। मध्ययुगीन अंधकार से निकलने के लिए यह ज्ञान बहुत जरूरी था।[7] ब्रिटिशकाल में नये शिक्षित वर्ग में मुख्यतः प्राचीन हिन्दू वर्ग के लोग ही थे। इस वर्ग में ब्राह्मणों, कायस्थों का ही वर्चस्व था। मुम्बई में ब्राह्मणों, कायस्थों और पारसियों की प्रधानता थी और मद्रास में केवल ब्राह्मण ही इस क्षेत्र में थे।[8] इस तरह ब्रिटिश काल में भी शिक्षा मुख्यतः वर्ग विशेष तक ही सीमित रही। शूद्रों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के उदाहरण हमें नगण्य ही प्राप्त होते हैं।

यदि हम उत्तर प्रदेश की बात करें तो हम पाते हैं कि सरकार की शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्रदेश की स्थिति में गुणात्मक सुधार दिखायी देता है। 1951 में जहां प्रदेश में साक्षरता 18.33 प्रतिशत थी वहीं 2011 में साक्षरता 69.72 प्रतिशत रही है।[9] यद्यपि उत्तर प्रदेश राष्ट्रीय औसत 74.04 प्रतिशत से

पीछे चल रहा है।[10] जनगणना 2011 के प्रयोजन के लिये 7 साल और उससे अधिक आयु का कोई भी व्यक्ति जो किसी भाषा में लिख पढ़ और समझ सकता हो, उसे साक्षर माना गया है। उत्तर प्रदेश में पिछले लगभग 45 वर्षों में शिक्षा की स्थिति निम्नवत् रही है:–

**तालिका–1 शिक्षण संस्थानों की संख्या**

| वर्ष | विश्वविद्यालय | डिग्री कालेज | उच्चतर माध्यमिक स्कूल | उच्च प्राथमिक विद्यालय | प्राथमिक विद्यालय |
|---|---|---|---|---|---|
| 1980-81 | 19 | 361 | 5174 | 13555 | 70606 |
| 1990-91 | 20 | 419 | 5999 | 15079 | 77111 |
| 2000-01 | 23 | 758 | 10532 | 25681 | 105014 |
| 2011-12 | 30 | 3553 | 19000 | 76000 | 156000 |

(स्रोत : सांख्यिकीय सारांश उत्तर प्रदेश, 2009 एवं उत्तर प्रदेश, 2013)

**तालिका–2 शिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या**

| वर्ष | विश्वविद्यालय | उच्च प्राथमिक विद्यालय | उच्चतर माध्यमिक स्कूल | प्राथमिक विद्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1980-81 | 9368401 | 1804514 | 3248328 | 345169 |
| 1990-91 | 13642585 | 3097354 | 4767890 | 572816 |
| 2000-01 | 18545185 | 4132227 | 7602739 | 1146145 |
| 2008-09 | 27644512 | 9712196 | 10230116 | 2474451 |

(स्रोत : सांख्यिकीय सारांश, उत्तर प्रदेश, 2009)

**तालिका–3 उत्तर प्रदेश में संस्थावार अनु0जाति/जनजाति के विद्यार्थियों की संख्या**

| वर्ष | प्राथमिक विद्यालय | उच्च प्राथमिक विद्यालय | उच्चतर माध्यमिक स्कूल |
|---|---|---|---|
| 1995 | 3537674 | 638091 | 735372 |
| 2000 | 4213715 | 798002 | 940170 |
| 2008 | 7890779 | 2910457 | 2109793 |
| 2010 | - | - | 2310269 |

(स्रोत : सांख्यिकीय सारांश, उत्तर प्रदेश, 2014)

आजादी के पश्चात उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। 1950–51 में भारत में 27 विश्वविद्यालय, 370 कॉलेज (सामान्य शिक्षा) 208 प्रोफेशनल कॉलेज (इंजीनियरिंग एवं मेडिकल शिक्षा) प्रदान कर रहे थे। 2006–07 में भारत में 369 विश्वविद्यालय (222 स्टेट विश्वविद्यालय

20 सेन्ट्रल विश्वविद्यालय), 109 डीम्ड विश्वविद्यालय, 5 राज्य सरकार के अधीन एवं 13 राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों एवं राज्य द्वारा सहायता प्राप्त 18,064 महाविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। मानव विकास संसाधन मंत्रालय के अनुसार इनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 11 मिलियन थी।[11]

भारत की आजादी के पश्चात् देश के संविधान में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को नौकरियों में समुचित आरक्षण का प्राविधान रखा गया। सामाजिक रूप से उपेक्षित वर्ग के लिये आरक्षण करने के पीछे सरकार की यह मंशा थी कि इससे सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग को आगे आने का मौका मिलेगा। आज इस दी गयी संवैधानिक व्यवस्था के कारण इस वर्ग से लोग नौकरियों में आने लगे हैं। सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की स्थिति निम्नवत् रही[12]–

(आँकड़े प्रतिशत में)

| वर्ष | समूह–क | | समूह–ख | | समूह–ग | | समूह–घ | | कुल | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अ0 जाति | अ0ज0 जाति | अ0 जाति | अ0ज0 जाति | अ0 जाति | अ0ज0 जाति | अ0 जाति | अ0ज0 जाति | अ0 जाति | अ0ज0 जाति |
| 1965 | 1.64 | 0.27 | 2.82 | 0.34 | 8.88 | 1.14 | 17.75 | 3.39 | 13.17 | 2.25 |
| 2008 | 12.5 | 4.9 | 14.9 | 5.7 | 15.7 | 7.00 | 19.6 | 6.9 | 17.5 | 6.82 |

यह आंकड़े यह इशारा करते हैं, कि संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत दिये गये आरक्षण को आजादी के लगभग 68 वर्ष बाद भी अभी तक समूह क, ख, ग में आरक्षण पूरा नहीं हुआ है। आज भी वंचित वर्ग के लोग सरकारी नौकरियों के सहारे ही जीवनयापन कर रहे हैं। ग्रामीण इलाकों में इस वर्ग के अधिकांश लोग मजदूरी कर अपनी जीविका चलाने के लिए मजबूर हैं।

न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधानपालिका की मनमानी पर अंकुश लगाती है। परन्तु न्यायपालिका का वर्तमान ढांचा सामाजिक समानता और न्याय के राष्ट्रीय उद्देश्य को पूर्ण नहीं करता है। दुर्भाग्य से उच्च न्यायपालिका का गठन यह प्रदर्शित करता है कि अधिकांश न्यायाधीशों को सोसायटी के उन्हीं वर्गों से लिया जाता है जो युगों से पुराने सामाजिक पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। न्यायपालिका की स्थिति की समीक्षा करने के लिये

सरकार ने करिया मुण्डा कमेटी बनायी थी जिसने अपनी रिपोर्ट (2000) में संसद में प्रस्तुत की थी।[13] यह रिपोर्ट न्यायपालिका में आरक्षण की व्यवस्था का पालन न किये जाने से असन्तुश्ट थी।

आज हम उस देश में शिक्षा के निजीकरण की बात कर रहे हैं जहाँ 45 करोड़ 60 लाख लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। योजना आयोग की रिपोर्ट (वर्ष 2004–05) के अनुसार भारत में 27.5 प्रतिशत लोगों को गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे थे। योजना आयोग के अनुसार 32 रूपये शहर में 26 रूपये गांव में खर्च करने वाले सदस्य को गरीबी रेखा की नीचे दी जाने वाली सुविधायें नहीं मिलेंगी। 2011–12 में रंगराजन रिपोर्ट ने 26 करोड़ ग्रामीण इलाके एवं 10 करोड़ शहरी इलाके, और कुल 36 करोड़ भारतीय लोगों को गरीबी रेखा के नीचे माना।[14] आज भी भारत की कुल जनसंख्या का 68.85% हिस्सा ग्रामीण इलाकों में रहता है।[15] जिसके पास स्कूल में भरने के लिए फीस का जुगाड़ करना आसान काम नहीं है। शिक्षा के निजीकरण से इन लोगों जिसमें अधिकांशतः अनुसूचित जाति एवं जनजाति, पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा प्राप्त करने के अवसर बहुत सीमित हो रहे हैं।

शिक्षा के निजीकरण का अर्थ है, सरकार का निजी संस्थानों पर न्यूनतम नियंत्रण का होना जिससे उन्हें हर प्रकार की मनमानी करने का अवसर मिलता है। निजी स्कूलों के दिखाने और खाने के दाँत अलग–अलग होते हैं। प्रत्येक वर्ष मनमाने तरीके से हर वर्ष 25–30 प्रतिशत फीस बढ़ा ली जाती है। प्रत्येक वर्ष रजिस्ट्रेशन फीस, डेवलपमेण्ट के नाम पर, एक्टिविटी फीस, एडमिशन फीस, लैब फीस, लाइब्रेरी फीस, कम्प्यूटर फीस, खेलकूद फीस, मनोरंजन फीस, पिकनिक फीस, मेला या सांस्कृतिक आयोजन शुल्क आदि निजी स्कूलों द्वारा वसूले जाते हैं। पूर्व में दिये गये आंकड़े कहते हैं कि हमारे देश में पीड़ित अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अधिकांश छात्र–छात्राओं के अभिभावक इतना पैसा नहीं खर्च कर पायेंगे। अभी तक सरकार के नियंत्रण में जिस भी प्रकार की शिक्षा चलायी जा रही है उससे

सभी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिल रहा है परन्तु निजीकरण कुछ लोगों तक ही शिक्षा को सीमित कर देगा, जिससे कुछ अमीरों के ही बच्चे शिक्षा प्राप्त कर पायेंगे। शिक्षा के निजीकरण से शिक्षा मुनाफाखोरों की जेब में पहुंच जायेगी। आज विदेशी शिक्षा संस्थान भी भारत में घुसपैठ करने की फिराक में हैं और यह षड़यन्त्र एक सुनियोजित तरीके से चलाया जा रहा है और जिसमें शिक्षा माफिया और सरकारें भी शामिल हैं। सारे बच्चों को शिक्षित करना सरकारी की जिम्मेदारी है, और सरकार इससे बच रही है। इन कदमों का पूरी ताकत से विरोध होना चाहिये। आज शिक्षा की कई परतें बन गयी हैं, जिसकी जैसी आर्थिक हैसियत है उसके हिसाब से वह अपने बच्चों को उसी स्तर से पढ़ा रहा है। सरकारी स्कूलों की हैसियत जानबूझकर खराब बना दी है जिसमें समाज के गरीब अनुसूचित जाति एवं पिछड़े परिवारों के बच्चे ही स्कूल जा रहे हैं। निजी स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में सभी बच्चे नहीं पढ़ सकते हैं क्योंकि उसकी फीस चुकाने की क्षमता इन लोगों में नहीं है।

भारत में शिक्षा के बढ़ते निजीकरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने चिन्ता व्यक्त की है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष दूत किशोरी सिंह ने यूनेस्को तथा शिक्षा अधिकार मंच द्वारा नई दिल्ली में आयोजित व्याख्यान माला में भारत समेत कई विकासशील देशों में शिक्षा के निजीकरण के कारण समाज का गरीब एवं वंचित तबका शिक्षा से वंचित होता जा रहा है। किशोरी सिंह जी ने कहा कि शिक्षा प्रदान करना राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। यहां सन्देश स्पश्ट है कि गरीब और वंचित वर्ग शिक्षा के अधिकार से दूर रह जायेगा।

सामाजिक न्याय की विचारधारा का जन्म शोषण के विरूद्ध असन्तोष के गर्भ से हुआ जब किसी के अधिकारों का हनन किया जाता है या उसे वंचित किया जाता है तब वह व्यक्ति अपने अधिकारों की मांग करता है। आज भी भारत के वंचित वर्ग रोटी, कपड़ा, मकान, पीने के लिए साफ पानी के लिए निरन्तर संघर्षरत है। हम अभी भी भारत के लोगों को पूरी तरह साक्षर नहीं बना पाये हैं। ऐसे में सभी के अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की बात करना बेईमानी सा लगता है। सरकारें आती हैं और बड़ी–बड़ी योजनायें बनाकर

चली जाती हैं और सारी शिक्षा व्यवस्था सिर्फ कागजों पर दौड़ती दिखायी देती है जबकि वास्तविकता कोसों दूर होती है। भारतीय संविधान और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ की वर्श 1948 की घोषणा के विपरीत हम अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को सामाजिक न्याय दिलाने में असफल रहे हैं। आज स्थिति यह है कि आने वाले वर्षों में इन वर्गों के लोग यदि विभिन्न निजी संस्थानों में प्रवेश परीक्षा पास भी कर लेते हैं तो भी गरीबी के कारण फीस चुकाने में असमर्थ होंगे और स्थिति तब और विकराल रूप धारण करेगी जब सरकार के नियंत्रण में चल रहे शिक्षण संस्थानों की स्थिति आज की तुलना में और अधिक खराब हो चुकी होगी।

**सन्दर्भ** –

1. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2006, पृष्ठ–509
2. हरित स्मृति, 3.13–14
3. गौतम धर्म सूक्त, 12.5
4. महाभारत, अनुशासनपर्व, 163.10
5. ग्रोवर बी0एल0 एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2002
6. ताराचन्द भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–2, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007, पृश्ठ–195
7. वही, पृष्ठ–196
8. वही, पृष्ठ–197
9. उत्तर प्रदेश वार्शिकी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 2013, पृष्ठ–XXIX
10. भारत प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ–22
11. इण्डियन पॉलिसी फोरम, 2007, इण्डियन हायर एजूकेशन रिफार्मस, ड्राफ्ट पेपर, देवेश एवं प्रतापभानु मेहता, कानपुर।
12. ब्रोसर आन रिजर्वेशन फार एस0सी0, एस0टी0 एवं अदरबैकवर्ड

क्लासेज इन सर्विसेज, चैप्टर–01, 2014

13. करिया मुंडा रिपोर्ट–न्यायपालिका में आरक्षण, 2000
14. रंगराजन पैनल रिपोर्ट, 2011–12
15. भारत प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2015, पृश्ठ–27

**अन्य स्रोत–**

1. सांख्यिकीय सारांश, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश, 2009
2. सांख्यिकीय सारांश, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश, 2014